हिंदी में समाज-विज्ञान और *मर्यादा*

वेंकटेश कुमार

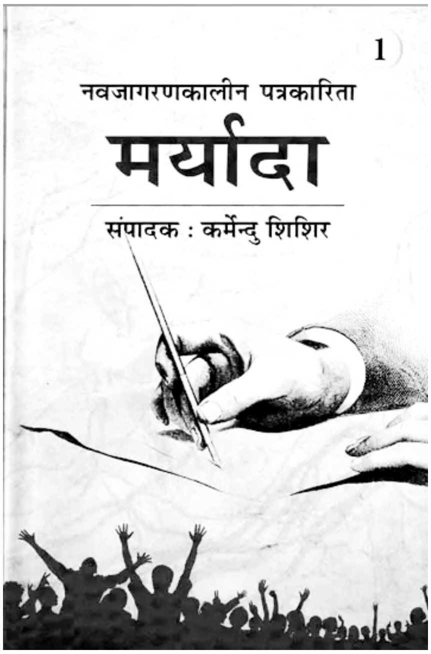

नवजागरणकालीन पत्रकारिता : मर्यादा
कर्मेन्दु शिशिर
अनन्या प्रकाशन, नई दिल्ली
2017
पृष्ठ : 2886.
मूल्य : ₹ 6000.

कहने की ज़रूरत नहीं कि हिंदी में समाज विज्ञान के अभाव का रोना एक सर्वमान्य फ़ैशन है। लेकिन बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में, जब खड़ी बोली अपने किशोरपन और जवानी का मज़ा ले रही थी, उसने रोना रोने वाले उपर्युक्त फ़ैशन को नकार दिया था। वह (खड़ी बोली) किसी भाषा से ख़ुद को कमतर मानने को तैयार ही नहीं थी। खड़ी बोली संभवतः अकेली ऐसी भाषा है जिसने अपने निर्माण के इतने कम समय के भीतर ज़माने से दो-दो हाथ करने के लिए ख़ुद को तैयार कर लिया। 'हिंदी नए चाल में ढली' की घोषणा करने वाले भारतेंदु ने यह सोचा नहीं होगा कि उनकी लगाई 'पौध' इतनी जल्दी वटवृक्ष का रूप ले लेगी। क्या यह आकस्मिक है कि आधुनिक हिंदी साहित्य के दो महान निर्माताओं ने एक ही सपने को पूरा करने के लिए अपना बलिदान दे दिया। 1860-70 के आसपास हिंदी की बात करने पर

21venkatesh_kumar_Layout 1 22-02-2024 16:22 Page 460

जब यह सवाल पूछा जाने लगा कि आख़िर हिंदी साहित्य है कहाँ तब भारतेंदु ने *कविवचन सुधा* और *हरिश्चंद्र मैगज़ीन* जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से इस सवाल का जवाब दिया। जब हिंदी पर कविता-कहानी तक ही सीमित रहने का आरोप लगाया जाने लगा तब अपने समय के बड़े कथाकार प्रेमचंद ने हिंदी में राजनीतिक पत्र निकालने का सपना देखा और उसे पूरा भी किया। कहना न होगा कि हिंदी को राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय विमर्शों की भाषा बनाने में उन्नीसवीं शताब्दी के आख़िरी और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं और उसके संपादकों-लेखकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस बात से अनजान रहने के कारण ही हम हिंदी में समाज विज्ञान के अभाव का रोना रोने को एक सर्वमान्य फ़ैशन बना चुके हैं। *सारसुधानिधि*, *सरस्वती*, *प्रताप* और *मर्यादा* जैसी पत्रिकाओं की फ़ाइलों को गंभीरता से पलटने वाला कोई शोधार्थी यह कहने की हिम्मत नहीं जुटा सकता कि हिंदी में समाज वैज्ञानिक विमर्शों का अभाव है। हाँ! घटना यह घटी कि हम अपनी इस समृद्ध विरासत को भूल गए। सौभाग्य से भारतीय नवजागरण पर काम करने वाले अध्येताओं का ध्यान इस ख़ज़ाने की ओर गया। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। भारतेंदु युग की अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ नष्ट होकर विस्मृति के गर्भ में समा चुकी थीं। भारतेंदु युग (1850-1900) पर विशेष अध्ययन करने वाली वसुधा डालमिया का मानना है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र का लिखा अधिकांश नष्ट हो गया। भारतेंदु की जो रचनावली उपलब्ध है, वह दरअसल उनका रचना संचयन है। भारतेंदु संपादित पत्र-पत्रिकाएँ भी आज अध्ययन के लिए कहीं उपलब्ध नहीं हैं। हिंदी के इस दुर्भाग्य की ओर जिन विद्वानों का ध्यान गया, उनमें कर्मेन्दु शिशिर का नाम बहुत ही आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। हिंदी की दुनिया इस बात से परिचित है कि कर्मेन्दु शिशिर ने अपने लेखकीय जीवन का एक बड़ा हिस्सा पुरानी पत्र-पत्रिकाओं के संकलन-संपादन में खपा दिया। यह काम बहुत ही धैर्य और मेहनत की माँग करता है और उसके अनुपात में यश बहुत ही कम मिलता है। यही नहीं लेखक की स्वयं की मुख्य रचनाओं से पाठकों का ध्यान भी भटकता है और उसकी पहचान पत्र-पत्रिकाओं के संकलन और संपादक के रूप में बनने लगती है। कहना न होगा कि कर्मेन्दु शिशिर ने यह जोखिम लेते हुए हिंदी की कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं की सामग्री को संकलित-संपादित करके उसे बचा लिया है। हमें कर्मेन्दु शिशिर को यह श्रेय देना ही होगा कि उन्होंने अथक प्रयास करके हिंदी में पुरानी पत्र-पत्रिकाओं के संकलन संपादन का एक माहौल तैयार किया, ख़ासकर युवा लेखकों को इस क्षेत्र में काम करने के लिए प्रोत्साहित किया। हम देख सकते हैं कि आज हिंदी की कई पुरानी पत्र-पत्रिकाओं की फ़ाइलें किताब के रूप में पाठकों के लिए सहज उपलब्ध हैं।

कर्मेन्दु शिशिर ने *मर्यादा* जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिका की सामग्री को छह खण्डों में प्रस्तुत किया है। *मर्यादा* मूलतः एक राजनीतिक पत्रिका थी। बीसवीं शताब्दी के आरंभिक तीन दशकों के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य को

21venkatesh_kumar_Layout 1 22-02-2024 16:22 Page 461

समझने के लिए इस पत्रिका की सामग्री का दस्तावेजी महत्त्व है। समाज विज्ञान के अध्येताओं के लिए कर्मेन्दु शिशिर की ओर से यह एक अनुपम उपहार है।

मर्यादा के महत्त्व और परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए हमें *नागरी प्रचारिणी सभा (स्थापना-1893) और हिंदी साहित्य सम्मेलन (1910)* के उद्देश्यों और कार्यों को समझना होगा। इन दोनों संस्थाओं ने हिंदी की बेहतरी के लिए जो उद्देश्य निर्धारित किए थे, *मर्यादा* ने उसे ही अपना आदर्श बनाया। स्वाभाविक रूप से इन संस्थाओं की विशेषताओं के साथ उसकी सीमाएँ भी मर्यादा में समाहित हो गईं। उल्लेखनीय है कि 1910 ई. ही वह वर्ष है, जब *हिंदी साहित्य सम्मेलन* और *मर्यादा* दोनों का जन्म हुआ। यह सिर्फ़ संयोग नहीं है कि जिन राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने *हिंदी साहित्य सम्मेलन* के पहले अधिवेशन (10 अक्टूबर 1910) का प्रस्ताव पढ़ा उन्हीं राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने *मर्यादा* के प्रवेशांक (नवंबर 1910) का अग्रलेख भी लिखा। इस अग्रलेख में टंडन जी ने *मर्यादा* को परिभाषित करने की कोशिश की है। हम जानते हैं कि 1910 का दौर वह दौर था जब अंग्रेज़ हमारे नायक और खलनायक दोनों थे। हमें अंग्रेज़ों का विरोध कैसे करना है, पश्चिमी सभ्यता से क्या ग्रहण करना है और क्या छोड़ देना है, यह एक बड़ा यक्ष प्रश्न था। इस दौर के लेखक-बुद्धिजीवी को यह 'यक्ष-प्रश्न' बहुत तंग कर रहा था। एक तरफ़ हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति है, दूसरी तरफ़ वर्तमान की ज़रूरत और उसका तनाव है। इसके बीच संतुलन बनाना बहुत ज़रूरी है – 'इसी डोर का – जिसका सिरा सृष्टि के आदि में नाग पर शयन करते हुए विष्णु की नाभि में है, जिसका दूसरा कोना इस समय हमसे बँधा है और आगे औरों को बाँधेगा। जिसकी लंबान का कोई हिसाब नहीं, जो तोड़ी नहीं जा सकती परंतु मात्राओं में बढ़ाई जा सकती है – इसी का नाम मर्यादा है।' दो वर्ष बाद नवंबर 1912 में पत्रिका का विश्लेषण करते हुए इसके संपादक ने अपने उद्देश्यों को स्पष्ट किया –

(1) *मर्यादा* की छोटी और क्षीण-कलेवर नहीं, वरन् मोटी और अधिक उपयोगी लेखों से युक्त संख्याएँ प्रकाशित करेंगे।

(2) स्वतंत्रता, समता के व्यवहार और सार्वजनिक मातृभाव का उपदेश करेंगे।

(3) अत्याचार का दृढ़तापूर्वक विरोध करेंगे।

(4) जाति और रंग-संबंधी भेदभाव तथा ईर्ष्याद्वेष को दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

(5) भारतवासियों को ईश्वरप्रदत्त मनुष्योचित अधिकार प्राप्त करने में सहायता।

अनेक संकटों से गुज़रने के बावजूद *मर्यादा* ने उपर्युक्त उद्देश्यों से कभी समझौता नहीं किया। *मर्यादा* का उद्देश्य गंभीर विषयों पर लंबे-लंबे लेख प्रकाशित करना था। यह काम उस दौर में आसान नहीं था। *मर्यादा* के नवंबर 1913 की यह टिप्पणी अपने आप में बहुत कुछ कहती है – 'उच्च कोटि की साहित्य-शिक्षा के साथ ही साथ राजनैतिक विषयों की शिक्षा देने के हेतु *मर्यादा* का जन्म हुआ था। यह कार्य सरल नहीं है। पहले तो अधिकांश लोग जो इस शिक्षा को देने के योग्य हैं, वे हिंदी में कुछ लिखना अपना अपमान समझते हैं, दूसरे जो लिखना चाहते भी हैं उन्हें समय के अभाव का बहुत बड़ा बहाना है।'...

21venkatesh_kumar_Layout 1 22-02-2024 16:22 Page 462

जैसे-जैसे देश की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति में बदलाव होता गया वैसे-वैसे *मर्यादा* की संपादकीय दृष्टि भी बदलती गई। जनवरी 1917 को संपादकीय में *मर्यादा* ने स्पष्ट कर दिया कि अब उसका उद्देश्य भारत को 'स्वराज्य' दिलाना है। उसने 'स्वराज्य' संबंधी अपने अंकों का प्रचार-प्रसार आम जनता के बीच करने का निर्णय लिया। उसने इसकी एक सूची प्रकाशित की –

(1) हम स्वराज्य क्यों चाहते हैं?
(2) स्वराज्य का अर्थ क्या है?
(3) प्रजातंत्र : उसकी आवश्यकता
(4) भारतीय अर्थ-कोष
(5) स्वर्ण कोष- उसके सर्वोत्तम उपयोग के उपाय
(6) उद्योग-धंधे! देश पर उसका प्रभाव।
(7) भारतीय कृषि – उन्नति के सर्वोत्तम उपाय
(8) प्रांतीय स्वराज्य
(9) आर्थिक स्वराज्य – इसकी आवश्यकता
(10) प्राचीन भारतीय राज्य : प्रबंध में जनता की आवाज़
(11) विद्यार्थी स्वराज्य की प्राप्ति में किस प्रकार सहायक हो सकते हैं।
(12) गृहजात कला-कौशल! उनको पुनर्जीवित करने के उपाय
(13) युद्ध के बाद भारत की माँग

हम देख सकते हैं कि 1917 में *मर्यादा* में इन विषयों पर गंभीर विचार-विमर्श हो रहे थे।

भाषा का सवाल और सांप्रदायिक दृष्टि

हम जानते हैं कि भारतेंदु-युग से ही हिंदी-उर्दू का विवाद आरंभ हो गया था। यह सच है कि बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में यह विवाद और ज़्यादा कटु हो गया था। *मर्यादा* के कुछ अंकों के संपादन का दायित्व संभालने वाले प्रेमचंद भी उर्दू को छोड़कर हिंदी में लिखने लगे थे। *मर्यादा* की स्पष्ट नीति थी – 'हिंदी का विकास और विस्तार'। अपनी इस नीति को सफल बनाने के लिए उसका संघर्ष उर्दू और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं से था। हम जानते हैं कि बीसवीं शताब्दी के आरंभ में उर्दू और अंग्रेज़ी हिंदी की तुलना में बहुत ही विकसित और समर्थ भाषा थी। इसलिए हिंदी को समर्थ बनाने के लिए स्वाभाविक रूप से उर्दू और अंग्रेज़ी जैसी भाषाओं की नज़ीर दी जाती थी। दुर्भाग्य से यही वह दौर है जब हिंदी हिंदुओं की और उर्दू मुसलमानों की भाषा मानने का चलन शुरू हो गया था। *मर्यादा* में जनवरी 1911 के संपादकीय की ये पंक्तियाँ देखने लायक़ हैं – 'नया निकला हुआ मुसलमानी साप्ताहिक समाचार-पत्र सहयोगी *कॉमरेड* से मालूम हुआ कि एक उदारचेता मुसलमान महाशय ने *कॉमरेड* के पास 1500 की एक अच्छी रक़म इसलिए भेजी है कि इसी रक़म में से ऐसे मुसलमान विद्यार्थियों (अंडरग्रेजुएटों) के सालाना चंदे का कुछ अंश दिया करें कि जो लोग पूरा दाम देकर यह अख़बार नहीं ख़रीद सकते। क्या हमारे हिंदू उदारचेता धनीजनों में से कोई ऐसा आवश्यक दान न करेंगे जो उनके हिंदू जाति और उनकी मातृभूमि के हित में सहारा हो और हिंदी भाषा की उन्नति हो!'

21venkatesh_kumar_Layout 1 22-02-2024 16:22 Page 463

मदन मोहन मालवीय हिंदू विश्वविद्यालय, काशी की स्थापना के लिए लोगों से मदद की गुहार लगा रहे थे। उन्होंने *मर्यादा* में एक टिप्पणी लिखी – 'हमको स्मरण रखना चाहिए कि और-और जातियाँ अपने धर्म के प्रचार के लिए क्या-क्या यत्न कर रही हैं। ईसाई मत वाले अपने धर्म के प्रचार के यत्न में कितने ही लाख साल खर्च करते और अतुल परिश्रम उठाते हैं, मुसलमान भी अपने धर्म और अपनी जाति की उन्नति के लिए बड़े-बड़े यत्न कर रहे हैं। उन लोगों ने 25 लाख के लगभग चंदा कर लिया है और वे अपना स्वतंत्र मुसलमान विश्वविद्यालय अलीगढ़ में स्थापित करेंगे।... ऐसी दशा में हमको यह उचित है कि हम अपनी रक्षा के लिए अपनी उन्नति का यत्न करें।'

यह एक कड़वी सच्चाई है कि बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में हिंदू-मुस्लिम एकता का कोई आदर्श रूप हमारे सामने नहीं था। कई स्तरों पर हिंदू-मुस्लिम बँटे नज़र आ रहे थे। मुस्लिम लीग को भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की नीतियों पर भरोसा नहीं रह गया था। ऐसी स्थिति में मर्यादा के एजेंडे में हिंदू-हित की प्रधानता का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। और इस आधार पर *मर्यादा* को खारिज कर देना या सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने वाली पत्रिका कह देना उचित नहीं। *मर्यादा* ने कभी भी हिंदू-मुस्लिम एकता का विरोध नहीं किया, मुस्लिमों के प्रति नफ़रत का भाव प्रदर्शित नहीं किया। महात्मा गांधी ने हिंदू-मुस्लिम एकता का जो प्रयास आरंभ किया था, *मर्यादा* ने उसका समर्थन किया। मर्यादा ने अपने संपादकीय में लिखा – 'हिंदू-मुसलमान अब एक हैं। ब्राह्मण, सैयद, शेख, क्षत्रिय, वैश्य, कुंजड़े, कसाई, शूद्र-भंगी, चमार सबकी रगों में एक ही ख़ून बह रहा है। दिल्ली की सड़कों पर बहने के समय ख़ून ने अपने भाई के ख़ून को पहचान लिया और वे एक हो गए। देखने वाले हिंदू और मुसलमानों ने भी ग़ौर किया तो उनको दिखाई दिया कि ख़ून एक है, किसी क़िस्म का उसमें अंतर या फ़र्क़ नहीं और वे एक हो गए हैं। ख़ून का ख़ून से मेल हो गया। स्वयं ईश्वर ने उनको एक किया है और संसार में कोई भी शक्ति अब हिंदू-मुसलमानों की एकता को भंग नहीं कर सकती। जिस एकता के लिए हम लालायित थे, जिस पर भविष्य की आशाएँ अवलंबित थीं, वह एक हो गया और हम आशा करते हैं – सदा के लिए हो गया है। अब फिर भारत स्वर्ण भारत होगा।'

अंग्रेज़ों की नीति की आलोचना

20वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ जोखिम उठाते हुए भी अंग्रेज़ों की नीतियों की आलोचना कर रही थीं, *मर्यादा* उस दौर की ऐसी ही महत्त्वपूर्ण पत्रिका थी। प्रेस ऐक्ट के विरोध में *मर्यादा* में लेख प्रकाशित हो रहे थे। प्रेस ऐक्ट को भारतीय क़ानूनी किताब कलुषित करने वाला ऐक्ट कहा गया। प्रेस ऐक्ट, अंग्रेज़ संपादक और अंग्रेज़ी की पत्र-पत्रिकाओं को तो सहूलियतें देता था लेकिन देशी भाषा में निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं पर कड़ा रुख़ अपनाता था – 'दिल्ली देश की राजधानी होने के समय कलकत्ते के गोरे पत्रों ने लार्ड हॉर्डिंग पर जैसा आक्रमण किया था उस तरह

21venkatesh_kumar_Layout 1 22-02-2024 16:22 Page 464

से तो क्या यदि उसका शतांश भी कोई देशी पत्र लिखता तो मालूम नहीं कितने वर्षों तक उसके संपादक को जेल की हवा खानी पड़ती किंतु गोरे संपादक चैन कर रहे हैं, वे भारतवासियों को गाली देते हैं उनका कुछ नहीं होता। यह अन्याय दूर होना चाहिए, काले, गोरों के लिए एक क़ानून होना चाहिए और जो क़ानून इन दोनों को भेदभाव की दृष्टि से देखे उसका क़ानूनी पुस्तक में रहना कभी उचित नहीं कहा जा सकता।'

कर्मेन्दु शिशिर ने *मर्यादा* में प्रकाशित सामग्री का छह खण्डों में जो संकलन किया है, वह समाज विज्ञान और साहित्य के अध्येताओं के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसके पहले खंड में मुख्य रूप से मर्यादा के संपादकीय टिप्पणियों का संकलन किया गया है। इन संपादकीय टिप्पणियों का विस्तृत फ़लक़ देखकर पाठक हैरान रह जाते हैं। क्षेत्रीय से लेकर अंतरराष्ट्रीय परिघटनाओं पर बहुत ही सटीक और सुलझे हुए विचार *मर्यादा* के 'संपादकीय' की विशेषता है। *मर्यादा* के संपादकीय 'अंग्रेज़ी शासन से मुक्ति' के विचार से भरे पड़े हैं। 'भारत से अंग्रेज़ों को तुरंत चले जाना चाहिए' उसके संपादकों में इसको लेकर कोई किंतु-परंतु नहीं है। मर्यादा के संपादकीय बहुत ही बेबाक और सोई हुई जनता को झकझोरने वाले होते थे। 'इंग्लैंड की डेमोक्रेसी की हुई अपील की हीनता' शीर्षक संपादकीय की इन पंक्तियों को देखा जाए – 'यह उस समय की बात है जिस समय स्वनामधन्य लाला लाजपत राय स्वर्गवासी गोखले आदि इंग्लैंड की जनता के सामने अपील करने गए थे। लालाजी हिंदी की हीन दशा का चित्र चित्रित कर प्लेटफार्म से उतरे थे। एक अंग्रेज़ ने आकर उनसे पूछा कि क्या जो कुछ आपने कहा है वास्तव में सत्य है? लालाजी ने कहा 'हाँ' उसने पूछा तुम्हारी संख्या कितनी है? लालाजी ने कहा 30 करोड़। अंग्रेज़ ने कहा मेरी जो कुछ सहानुभूति तुम्हारे व्याख्यान को सुनकर तुम्हारे भाइयों के साथ हुई थी काफ़ूर हो गई। तीस कोटि मनुष्यों पर थोड़े हमारे भाई अन्याय से शासन कर रहे हैं और उसके लिए तुम यहाँ रोना रोने आए हो, तुम लोग इसी योग्य होगे'। कहना न होगा कि 1917 में किसी पत्रिका में इस तरह के प्रसंग का छपना कितनी साहसिक बात है।

स्त्रियों के बारे में भी *मर्यादा* की संपादकीय दृष्टि आधुनिक थी। मार्च 1913 में 'स्त्रियों पर अत्याचार' शीर्षक संपादकीय प्रकाशित हुआ। इसमें स्त्रियों के प्रति समाज का जो दृष्टिकोण बदल रहा है, उसका स्वागत किया गया, लेकिन साथ ही उसे अमर्यादित और हास्यास्पद भी बताया गया – 'शिक्षित आर्या ज़्यादा योग्यता के साथ घर की ग़ुलामी और पति परमेश्वर का मनोरंजन कर सकती है। इससे समाज का कोई विशेष लाभ होने की संभावना नहीं है। लोहे की ज़ंजीर की जगह आप उनको मुल्लमे की बेड़ियाँ पहना दें, पर बात तो वही रही। समाज यथोचित् रीति में समुन्नत नहीं होता। जब तक उसमें स्त्री-पुरुष का संबंध स्वाधीन, पारस्परिक सेवा-भाव पर निर्भर नहीं।' स्पष्ट है कि स्त्रियों को अधिकार देने से ज़्यादा प्रासंगिक है उन्हें मित्र या सखा भाव से स्वीकार करना। कहना न होगा कि वैचारिक रूप से *मर्यादा* के संपादक वह

21venkatesh_kumar_Layout 1 22-02-2024 16:22 Page 465

ज़मीन तैयार कर रहे थे जिस पर आगे चलकर सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जैसे कवियों ने स्त्रियों के प्रति मित्र-भाव की कविताएँ लिखीं।

मर्यादा की एक विशेषता यह भी है कि सस्ती लोकप्रियता पाने के लिए उसने कभी विचार और भाषा का स्तर गिरने नहीं दिया। उस दौर की पत्र-पत्रिकाओं में होली के बहाने भाषायी छूट लेने की परंपरा विकसित हो रही थी। *मर्यादा* ने बहती गंगा में हाथ धोने से इंकार कर दिया। इस संदर्भ में उसने अपने विचार स्पष्ट करते हुए 'होली और गंदे मज़ाक' शीर्षक टिप्पणी में लिखा – 'हम साहित्य-सेवियों से सविनय निवेदन करते हैं कि जो हिंदी को हिंदुस्तान की राष्ट्र-भाषा बनाने के इच्छुक हैं उन्हें मातृभाषा की हत्या इस निर्दयता के साथ न करनी चाहिए। हमें आशा है कि हमारे सहयोगी इस नोट को उदारभाव में ग्रहण कर कुछ बुरा न मानेंगे। प्रत्येक संपादक को साहित्य से फूहड़पने को दूर करने का प्रबल प्रयत्न करना चाहिए।'

मर्यादा के दूसरे खंड में कविता, लेख, व्यक्तित्व, यात्रा संस्मरण के साथ ही कुछ स्थायी स्तंभ की सामग्री को प्रस्तुत किया गया है। यह खंड दरअसल *मर्यादा* की साहित्यिक सामग्री का संकलन है। इस खंड में कुछ ऐसे लेख भी हैं, जिनका हिंदी समालोचन के विकास में ऐतिहासिक महत्त्व है। नवंबर 1910 में प्रकाशित श्रीधर पाठक का लेख *खड़ी बोली की कविता*, बालकृष्ण भट्ट का लेख 'कविता क्या है' तथा किशोरीलाल गोस्वामी का लेख 'शब्द की प्रेरणाशक्ति' का निश्चित रूप से ऐतिहासिक

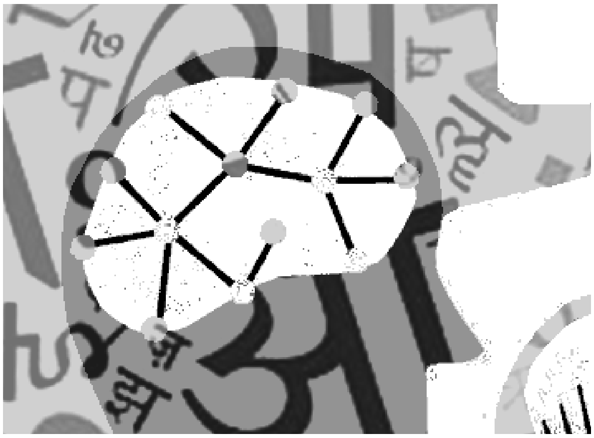

महत्त्व है। *मर्यादा* से जुड़े अधिकांश लोग मूलतः साहित्यकार ही थे। हम जानते हैं कि *मर्यादा* के कुछ अंकों का संपादन कथा-सम्राट प्रेमचंद ने भी किया था। *मिश्रबंधु विनोद* और *सेवासदन* जैसी किताबों की आरंभिक समीक्षाएँ *मर्यादा* में ही छपी थीं। मार्च 1919 में पं. विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने 'सेवा-सदन समालोचना' शीर्षक लेख लिखा था। इस उपन्यास पर बात करते हुए 'कौशिक' ने इसकी सीमाओं की ओर भी ध्यान दिलाया – 'पहली बात यह कि उपन्यास का उठान अच्छा नहीं हुआ।... लेखक ने विचार संबंधी भूलें की हैं।' साहित्य-समालोचन शीर्षक स्तंभ में विभिन्न भारतीय भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं के ताज़ा अंकों का परिचय दिया जाता था। उस दौर में विभिन्न भारतीय भाषाओं की पत्र-पत्रिकाएँ एक परिवार की तरह होती थीं। किसी एक सदस्य पर जब संकट आता था तो सब मिलकर उसका सामना करते थे। इस मामले में *मर्यादा* ने एक आदर्श स्थापित किया था।

मर्यादा के तीसरे खंड में कला, शिक्षा, विज्ञान, स्त्री, किसान और जाति व्यवस्था संबंधी लेखों का संकलन किया गया है। इस

21venkatesh_kumar_Layout 1 22-02-2024 16:22 Page 466

खंड की भूमिका में कर्मेन्दु शिशिर ने ठीक ही लिखा है कि 'राजनीतिक पत्र होते हुए भी मर्यादा के सरोकार व्यापक थे और उसकी चिंताएँ बहुआयामी थीं। वह देश के हर पक्ष, हर विधा में आधुनिक उत्कर्ष का आकांक्षी था।' इस तीसरे खंड के पहले भाग में चित्रकला और शिल्पकला पर आनंद स्वामी, ए. के. कुमारस्वामी, परशुराम चतुर्वेदी जैसे विद्वानों के लेख संकलित हैं। दूसरे भाग में शिक्षा-संबंधी लेखों का संकलन किया गया है। इसमें गोपालकृष्ण गोखले, रमाबाई रानाडे, महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे चिंतकों ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया है। *विज्ञान* के अंतर्गत *वैज्ञानिक अनुसंधान का महत्त्व*, *यंत्र-विद्या*, *विज्ञान का समाज पर प्रभाव* और *हवन से हानि* जैसे गंभीर और तार्किक लेख संकलित हैं।

मर्यादा अपने दौर में 'स्त्री-प्रश्न' पर गंभीर विमर्श करने वाली बहुत ही महत्त्वपूर्ण पत्रिका थी। 'स्त्री-प्रश्न' पर एनी बेसेंट, कमलादेवी श्रीवास्तव, उमा नेहरू जैसी विदुषी के लेख प्रकाशित होते थे। फरवरी 1914 के अंक में एनी बेसेंट का लेख *भारतीय स्त्रियों का उत्थान कैसे हो सकता है* प्रकाशित हुआ। इस लेख में एनी बेसेंट एक बहुत ही मार्के का सवाल उठाती हैं – 'आधुनिक समय में बहुत कम लोग इस बात का अनुभव करते हैं कि भारतीय धार्मिक और राजनीतिक इतिहासों में भारतीय स्त्रियों ने कितना बड़ा भाग लिया था। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ तक भारत की कितनी ही प्रसिद्ध स्त्रियों के नाम गिनाए जा सकते हैं और यह एक विचित्र संयोग की बात है कि ज्यों-ज्यों यहाँ ब्रिटिश राज का अधिक प्रसार होता गया त्यों-त्यों लोकसेवा के क्षेत्र से भारतीय स्त्रियों का लोप होता गया।'

भारत में कृषि और कृषक की समस्याओं की अवहेलना करके उस दौर की पत्रकारिता करना संभव नहीं था। दरअसल कृषि-समस्या पर बात करना अंग्रेज़ों को बेनक़ाब करना था। 'भारत में अंग्रेज़ी राज का इतिहास एक तरह से अकाल और भुखमरी का इतिहास रहा है' –इस बात को *मर्यादा* बहुत ही मज़बूती के साथ स्थापित कर रही थी। *मर्यादा* के अप्रैल 1914 के अंक में एक लेख प्रकाशित हुआ 'रेल और नहर'। इस लेख के लेखक की जगह 'एक किसान' दर्ज है। इस लेख में रेल और नहर की तुलना करते हुए यह बतलाया गया है कि नहर भारतीयों के लिए फ़ायदेमंद है और रेल अंग्रेज़ों के लिए – 'नहरों के बन जाने से खेतिहर अपने सारे काम कर सकता है। उसका जीना-मरना बादल की अपेक्षा उसके अधीन हो जाएगा। अनावृष्टि के कारण अकाल न पड़ सकेगा और साथ-ही-साथ दीन भारतवासियों को जो सहस्त्रों दुख अकाल के समय सहने पड़ते हैं वे काफ़ूर हो जाएँगे। सबसे बड़ा लाभ तो यह होगा, दूसरे हमारे सहस्त्रों भाइयों को नहरों के खुल जाने पर रोटियाँ मिलेंगी, रेल के किराए से कम खर्च पर व्यापारी माल भेज और मXगा सकेंगे। जिस दृष्टि से देखा जाए भारत और भारतवासियों का उपकार इसी में है कि रेल की अपेक्षा नहर को प्रधानता दी जाए।'

चौथे खंड में *मर्यादा* में प्रकाशित लेख निबंध, टिप्पणियों और भाषणों को संकलित किया गया है। हम देख सकते हैं कि

21venkatesh_kumar_Layout 1 22-02-2024 16:22 Page 467

अधिकांश लेखों का विषय 'स्वराज्य प्राप्ति' ही है। 'स्वाधीनता और पराधीनता', 'स्वदेश के लिए आत्मबलिदान', 'स्वराज्य साधन', 'स्वराज्य और भारत' जैसे दर्जनों लेख आम जनता में आज़ादी की भूख पैदा करने के लिए लिखे गए थे। इस खंड की सामग्री से गुज़रते हुए हम यह बहुत अच्छी तरह से समझ जाते हैं कि बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में पत्र-पत्रिका निकालना भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योग देना ही था। 'देशभक्ति और विवाह' एक दिलचस्प लेख है। हम जानते हैं कि स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान देने के लिए युवा अपनी डिग्री जला रहे थे, विदेशी वस्तु का बहिष्कार कर रहे थे। लेकिन इस लेख में मेजिनी के हवाले से यह बताया गया है कि देश को आज़ाद कराने के लिए यदि ज़रूरत पड़े तो युवाओं को विवाह और प्रेम से भी दूर रहना चाहिए – 'कभी-कभी मेजिनी के चित्त में ऐसा विचार उठता कि वह अपने दुःखमय जीवन को विवाह करके एक दुःख दूर करने वाली बीवी की प्रेमभरी चितवन से कुछ सुखी कर ले परंतु उसी समय उसकी देशभक्ति कहती है कि इटली की ऐसी बुरी अवस्था में उसको विवाह जैसे आनंददायक पदार्थ से क्या संबंध! वह सदा उन लेडियों को, जो उसके साथ विवाह की इच्छा प्रकट करती थीं, यही उत्तर देता था कि 'मैं अपनी देशभक्ति के साथ विवाह कर चुका हूँ, अब पुनः विवाह करना उचित नहीं।'

पाँचवें खंड में *मर्यादा* में प्रकाशित अंतरराष्ट्रीय ख़बर, प्रथम विश्वयुद्ध, और रूसी क्रांति से संबंधित लेखों को संकलित किया गया है। इस खंड के लेखों से गुज़रते हुए विश्वास नहीं होता कि 1910-20 ई. में हिंदी में अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर इतने गंभीर और विश्लेषणात्मक लेख लिखे जा रहे थे। इसी तरह से छठे खंड में इतिहास और आर्थिक मसलों पर केंद्रित गंभीर लेखों का संकलन किया गया। 'भारत की व्यापार नीति', *रुपये की रामकहानी*, *भारतीय राजधन और मुद्रा*, जैसे दर्जनों लेख हिंदी में आर्थिक-विमर्श को स्थापित करते हैं। इसी खंड में *मर्यादा* की विस्तृत रचना विवरणी (नवंबर 1910-अप्रैल 1923) प्रस्तुत की गई है, जो अपने आप में एक बड़ा श्रमसाध्य कार्य है। *मर्यादा* के कुल प्रकाशित अंकों की संख्या 114 है। कर्मेन्दु शिशिर को सारे अंक उपलब्ध करने में सफलता नहीं मिली है। उन्होंने लिखा है कि 'अगर सारे अंकों की सामग्री सुलभ होती तो शायद इतने और खंड या पृष्ठ बढ़ जाते।' कर्मेन्दु शिशिर ने छह खंडों में क़रीब तीन हज़ार पृष्ठों की सामग्री प्रस्तुत की है। कोई शोधार्थी चाहे तो *मर्यादा* के अंकों को उपलब्ध करके इतने ही पृष्ठों की सामग्री और संकलित कर सकता है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि *मर्यादा* की सामग्री को क़रीब तीन हज़ार पृष्ठों में संकलित करके कर्मेन्दु शिशिर ने साहित्य और समाज विज्ञान के अध्येयताओं के लिए एक नई दुनिया सर्वसुलभ कर दिया है।